PHILOSOPHY

PG, Paper-VIII (Hons., Paper-I & VIII)

Concept of God (Nyaya and Yoga)

न्याय और योग में ईश्वर

Dr. S. K. Singh
Mob.-9431449951

(A) न्याय दर्शन में ईश्वर :-

~~→ न्याय-वैशेषिक दर्शन समान तंत्र है; न्याय दर्शन वैशेषिक के तत्वमीमांसा को स्वीकारता है~~

→ न्याय-वैशेषिक दर्शन समान तंत्र है; वैशेषिक में तत्वमीमांसा प्रधान है; न्याय में तर्कशास्त्र और ज्ञान-मीमांसा का प्राधान्य है। फिर भी वैशेषिक ~~ईश्वर को~~ दर्शन निरीश्वरवादी है जबकि न्याय दर्शन ईश्वरवादी। उत्तरकालीन वैशेषिक ईश्वर की सत्ता स्वीकारते हैं।

→ न्याय दर्शन में ईश्वर को कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता और नियन्ता माना गया है। इनके अनुसार ईश्वर सर्वज्ञ है; नित्यज्ञानाधिकरण (नित्य + ज्ञान + अधिकरण) हैं। इनमें ऐश्वर्यादि गुण हैं। वे भक्तों पर कृपा करके तत्वज्ञान प्राप्ति में उनकी सहायता करते हैं। सृष्टि और प्रलय उनकी इच्छा से होती है।

→ उदयनाचार्य ने अपनी 'न्यायकुसुमांजलि' में ईश्वर-सिद्धि के लिये निम्नलिखित युक्तियाँ दी हैं - "कार्यायोजनधृत्यादेः पदात् प्रत्ययतः श्रुतेः।
वाक्यात् संख्याविशेषाच्च साध्यो विश्वविदव्ययः॥"

(i) कार्यात् → यह जगत कार्य है, अतः इसका निमित्त कारण अवश्य होना चाहिये। जगत में सामंजस्य एवं समन्वय इसके चेतन कर्त्ता से आता है। अतः सर्वज्ञ चेतन ईश्वर इस जगत के निमित्तकारण या प्रयोजक हैं।

(ii) आयोजनात् → जड़ होने से परमाणुओं में आद्यस्पन्दन नहीं हो सकता और बिना स्पन्दन के परमाणु द्वयणुक आदि नहीं बना सकते। जड़ होने से अदृष्ट भी स्वयं परमाणुओं से गति-संचार नहीं कर सकता। अतः परमाणुओं में आद्यस्पन्दन का संचार करने के लिये तथा उन्हें द्वयणुकादि बनाने के लिये चेतन ईश्वर की सत्ता आवश्यक है।

(iii) धृत्यादेः → जिस प्रकार इस जगत की सृष्टि के लिये चेतन सृष्टिकर्त्ता आवश्यक है, उसी प्रकार इस जगत को धारण करने के लिये एवं इसका प्रलय में संहार करने के लिये चेतन धर्त्ता एवं संहर्त्ता की आवश्यकता है; और यह कर्त्ता-धर्त्ता-संहर्त्ता ईश्वर है।

(iv) पदात् → पदों में अपने अर्थों को अभिव्यक्त करने की शक्ति ईश्वर से आती है। 'इस पद से यह अर्थ बोद्धव्य' है, यह ईश्वर-संकेत पद-शक्ति है।

(v) प्रत्ययत → वेद ईश्वर द्वारा उत्पादित ज्ञान है, अतः उनका प्रामाण्य पूर्ण और असंदिग्ध है। इससे भी सर्वज्ञ ईश्वर की सत्ता सिद्ध होती है।

(vi) श्रुते → वेद ईश्वर की सत्ता का प्रतिपादन करते हैं।

(vii) वाक्यात् → वेद विधि-निषेधात्मक वाक्यों द्वारा कर्तव्याकर्तव्य का निरूपण करते हैं। वे ईश्वर वाक्य हैं। अतः ईश्वर नैतिक नियम के संस्थापक एवं संरक्षक हैं। वे जगत के नियन्ता हैं।

(viii) संख्याविशेषात् → न्याय-वैशेषिक के अनुसार द्वयणुक का परिमाण उसके घटक दो अणुओं के पारिमण्डल्य से उत्पन्न नहीं होता, अपितु दो अणुओं की संख्या से उत्पन्न होता है। संख्या का प्रत्यय चेतन द्रष्टा से सम्बद्ध है। सृष्टि के समय जीवात्माएं जड़रूप रूप में स्थित हैं एवं अदृष्ट, परमाणु, काल, दिक, मन आदि सब जड़ हैं। अतः दो की संख्या के प्रत्यय के लिये ~~चेतना~~ चेतन ईश्वर की सत्ता आवश्यक है।

(ix) अदृष्टात् → अदृष्ट जीवों के शुभाशुभ कर्म-संस्कारों का आगार है। ये संचित संस्कार फलोन्मुख होकर जीवों के कर्मफल भोग कराने के प्रयोजन से सृष्टि के हेतु बनते हैं। किन्तु अदृष्ट जड़ है, अतः उसे सर्वज्ञ ईश्वर के निर्देशन तथा संचालन की आवश्यकता है। अतः ~~अदृष्ट~~ अदृष्ट के संचालक के रूप में सर्वज्ञ ईश्वर की सत्ता सिद्ध होती है।

⇒ वेदान्तियों के अनुसार ईश्वर की सत्ता तर्क से सिद्ध नहीं किया जा सकता। ईश्वर के पक्ष में जितने प्रबल तर्क दिये जा सकते हैं उतने ही प्रबल तर्क उसके विपक्ष में भी दिये जा सकते हैं। तथा, बुद्धि ~~तर्क~~ पक्ष-विपक्ष के तुल्य-बल तर्कों से ईश्वर की सिद्धि या असिद्धि नहीं कर सकती। जर्मन दार्शनिक कांट ने भी पाश्चात्य बुद्धिवादी दार्शनिकों के ईश्वर-सिद्धि हेतु प्रदत्त तर्कों को इसी कारण प्रभावहीन बताया है। वेदान्तियों के अनुसार ईश्वर केवल श्रुतिप्रमाण से सिद्ध होता है; अनुमान की गति ईश्वर तक नहीं है।

Scanned with CamScanner